



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2017; 3(4): 214-215

© 2017

www.anantaajournal.com

Received: 18-05-2017

Accepted: 20-06-2017

डॉ० राकेश कुमार

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय,
रोहतक, हरियाणा, भारत

संस्कृत-साहित्य में नाटक का उद्भव एवं विकास

डॉ० राकेश कुमार

सारांश

नाटक संस्कृत की प्राचीन, सशक्त एवं प्रभावशाली विधाओं में से एक सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। नाटक और मानव जीवन का सम्बन्ध शाश्वत रहा है। हमारे सम्मुख वर्तमान संसार एक रंगमंच है, जिस रंगमंच के हम किसी न किसी रूप में पात्र हैं। यहाँ पर कोई, विद्यार्थी की भूमिक निभा रहा है, कोई अध्यापक की तो कोई माता-पिता और भाई-बहिन की। हम सबको परमात्मा ने एक भूमिका, एक जिम्मेदारी दे रखी है, जिसको कोई किसी पात्र रूप में तो कोई किसी पात्र रूप में निभा रहा है अर्थात् मानव जीवन के व्यापक संदर्भों और यथार्थ जीवन के विविध आयामों से विषय चुनकर, वह समाज हित के लिए ही अपने रूप का निर्धारण करता है। सामान्य रूप से शब्दों तथा पात्रों की आकृति (शारीरिक बनावट) वेश-भूषा, भाव-भंगिमा, क्रियाओं के अनुकरण और भावों के अनुरूप अभिनय तथा प्रदर्शन के माध्यम से यथार्थ जीवन को प्रकट करने की कला ही नाटक है। नाटक के लिए संस्कृत साहित्य में, नाट्य, नाटक, रूपक, रंगकर्म, रंगमंच आदि विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है।

मूल शब्द: अभिनय, संवाद, रंगमंच, दृश्य काव्य, रस, मनन-चिन्तन, वेद, रूपक, समावेश, काल्पनिक नाटक, भाव-भंगिमा, हाव-भाव इत्यादि।

प्रस्तावना

नाटक का इतिहास एवं प्रारम्भ

किसी भी विधा की प्राचीनता, उसके प्रारम्भ, उद्भव, विकास अथवा इतिहास की जानकारी अगर करनी हो तो हम वेदों का आश्रय लेते हैं क्योंकि वेद किसी भी दस्तावेज की प्राचीनता एवं महत्ता को स्पष्ट करने वाला उत्तम स्रोत है। ऋग्वेद में यम-यमी और विश्वामित्र आदि संवाद दृश्य अभिनय से रहित वाचिक अभिनय संपन्न नाटक का ही एक रूप है। परन्तु साहित्य शास्त्र में भरतमुनि को नाट्य (नाटक) शास्त्र का जनक माना गया है। उन्होंने मानव के मनोविनोद एवं सामाजिक, राजनैतिक अथवा बौद्धिक विकास के लिए नाट्य को ब्रह्मा के आदेश से पंचमवेद के रूप में सृजित किया। नाटक की स्थापना के समय ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद, कथा-उपकथन) सामवेद संगीत का सर्वोत्तम स्रोत होने से वहाँ से संगीत को, यजुर्वेद से अभिनय (Acting) को तथा अथर्ववेद से नाटक के अन्तिम तत्त्व रस को ग्रहण किया।

एवं संकल्पय भगवान् सर्ववेदानुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसंभवम्।¹
जग्राह पाठ्यमृगवेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानार्थवणादपि।²

महाभारत के हरिवंश पर्व में उल्लेख प्राप्त होता है कि वज्रनाभ नामक राक्षस की नगरी में रामायण और कौबेररम्भसिसार नामक दो नाटक खेले गए थे।³ महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में 'कंस वध' और 'बलिबन्धन'⁴ नामक नाटकों के बारे में चर्चा की है। कामसूत्र नामक ग्रंथ में वात्स्यायन ने नाटककारों और नाटकों के बारे में लिखा है कि नटों का कार्य नागरिकों को नाटक दिखाकर उनका मनोरंजन करना है। उन दिनों नटों का नाटक करके जीवन निर्वाह करना ही मुख्य कार्य था।

Correspondence

डॉ० राकेश कुमार

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय,
रोहतक, हरियाणा, भारत

कुशीलवाश्चा गन्तव्यः प्रेक्षणमेषां दधुः।
द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजां नियतं लभेरन्। यथा –
श्राद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गा वा।⁵

नाटक का महत्त्व

वर्तमान युग में जो नाट्य कला का महत्त्व, इसकी महीमा एवं उसका विकास दिखाई दे रहा है, उसमें किसी न किसी रूप में प्राचीन नाट्य यात्रा की भूमिका आवश्य ही रही है। भारतीय नाटक के महत्त्व, उसके उद्भव और विकास यात्रा में भरतमुनि के मत को सर्वाधिक आदर प्राप्त है। उन्होंने नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में लिखा है कि मर्त्यलोक के लोगों को उदास देखकर इन्द्र आदि देवताओं ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के पास जाकर ऐसे नवीनतम वेद को लिखने के लिए विनती की, जिससे लोग के अन्दर विद्यमान, आलस्य, मानसिक तनाव व शारीरिक थकान दूर हो और जिसे देखकर लोग चिन्तामुक्त और आनन्दमय हो जावें। अतः भारतीय नाट्य परम्परा सर्वदा सुखान्त नाटकों के रूप में सहृदयों को रसास्वादन करवाने वाली है। संस्कृत के साहित्यशास्त्रियों ने काव्य के दो स्वरूप बतलाए हैं – दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य।

दृश्यश्रव्यत्व भेदेन पुनः काव्यं द्विधामतम् ।
दृश्यं तत्राभिनेयं तदरूपारोपात्तु रूपकम् ।⁶

इनमें से दृश्य काव्य में रूपकों तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है, क्योंकि इनका अभिनय किया जाता है। ये सहृदय दर्शकों द्वारा दृश्य होते हैं। दृश्य काव्य (नाटक) में अभिनेता अभिनय की अवस्था में नाटकीय पात्र के स्वरूप का अपने ऊपर आरोप कर लेता है, इसलिए नाटक को 'रूपक' कहा गया है। रूपक के ही दस भेदों में से एक भेद नाटक है। यथा –

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोग समवकारडिमाः ।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।⁷

(1) नाटक, (2) प्रकरण, (3) भाण, (4) व्यायोग, (5) समवकार, (6) डिम, (7) ईहामृग, (8) अंक, (9) वीथी तथा (10) प्रहसन। रघुवंश, कुमारसम्भव इत्यादि श्रव्य काव्यों की अपेक्षा दृश्य काव्य (नाटक) इत्यादि में मनोरञ्जकता, भावाभिव्यक्ति, हृदयग्राहिता तथा आकर्षकता अधिक होती है, क्योंकि वे अभिनेय होते हैं, जबकि श्रव्य काव्य केवल श्रवण के विषय होते हैं। इसलिए श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य (नाटकादि) अधिक जनप्रिय होते हैं। नाटक में बहुत सी ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिनसे मानव प्रेरणा के साथ रसास्वादन भी ग्रहण करता है।

भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में नाटकों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा है कि नाटक में ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, क्रिया कुशलता आदि सभी का समन्वय रहता है। वे कहते हैं कि इनमें से कुछ भी ऐसा नहीं है, जो नाटकादि में न हो –

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ।⁸

काव्य के ऐसे वैशिष्ट्य को अंगीकार करके ही कहा गया है – 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' अर्थात् काव्य की अपेक्षा नाटक अधिक रमणीय व रस का साक्षात्कार करवाने वाला होता है।

संस्कृत नाटक परम्परा

संस्कृत नाट्य परम्परा का जब सवाल आता है, 'नाट्यशास्त्र' ग्रन्थ के आधार पर संस्कृत के कई नाटककार सामने आएँ जिनमें महाकवि भास, शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्षवर्धन, भवभूति, विशाखादत्त आदि प्रमुख हैं।

महाकवि भास द्वारा रचित तेरह रूपक के कारण संस्कृत नाट्य परम्परा में भास का महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है। उनके सारे नाटक महाभारत, रामायण और कल्पना के आधार पर रचे गये हैं। महाभारत पर आधारित रूपकों में 'मध्यम-व्यायोग', 'कर्णभार',

'दूतघटोत्कच', 'उरुभंग', 'पंचरात्र', 'दूतवाक्य', बालचरित का समावेश है। रामायण के आधार पर रचित रूपकों में 'प्रतिमानाटक' और 'अभिषेक' नाटक आते हैं। जबकि काल्पनिक रूपकों में 'अविमारक', 'दरिद्रचारुदत्त', 'प्रतिज्ञायोगधरायण' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि नाटकों का समावेश है। भास के बाद संस्कृत नाटक परम्परा में शूद्रक का नाम आता है, उनके द्वारा रचित एक ही नाट्य रचना – 'मृच्छकटिकम्' है। 'मृच्छकटिकम्' अपने ढंग की एक अनूठी रचना है। उसके महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लक्ष्मीनारायण लाल लिखते हैं कि – 'मृच्छकटिकम्' बहुत ही उच्चकोटि की रचना है। इसमें व्याप्त कथातत्त्व, घटनाचक्र, कार्य, उसकी गति और नाट्य – व्यापार इस सत्य को पूर्णरूप से बताते हैं कि संस्कृत रंगमंच की प्रकृति और परम्परा क्या थी।⁹ शूद्रक के बाद महाकवि कालिदास का नाम महत्त्वपूर्ण है, उन्होंने तीन नाटक ग्रंथों की रचना की – 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय' और 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'। इन तीनों के केन्द्र में प्रेम है। कालिदास के नाटकों की मंचीयता को लेकर डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का कहना है कि – 'संस्कृत रंगमंच का संपूर्ण भावबोध, अर्थबोध, इनके नाटकों में मिला। काव्य, अभिनय, रंग इन तीनों तत्वों का अद्भूत समन्वय और उत्कर्ष उनके 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक में मिला।'¹⁰ कालिदास के बाद विशाखादत्त द्वारा विरचित 'मृदाराक्षस' नाटक भी संस्कृत नाटक परम्परा में उल्लेखनीय है। संस्कृत नाटक परम्परा में अन्तिम और महत्त्वपूर्ण नाटककार भवभूति है, जिसने 'नाट्यकला' में उत्तररामचरित' के माध्यम से एक नयी दृष्टि दी। उनके तीन नाटक उल्लेखनीय हैं – मालतीमाधव, महावीरचरित, उत्तररामचरित। भवभूति के साथ ही लगभग संस्कृत नाटकों का स्वर्णयुग समाप्त हो जाता है अर्थात् नाटक विकास यात्रा को ग्रहण लग जाता है। अन्तिम चरण में कई रूपक (नाटक) लिखे गये, उनमें राजशेखर का 'बालरामायण' और जयदेव का प्रसन्नराधव माननीय हैं। संस्कृत नाटक की ऐतिहासिक परम्परा और मंचीयता पर विचार करते हुए माना जा सकता है कि 'राजन्य संस्कृति उसका सौन्दर्यबोध यहीं से शुरू हुआ नाटक का लिखा जाना और उसका राजमंडप में राजभवन में अन्तःपुर में अभिहित होना और यहीं से विकसित हुई संस्कृत नाटक धर्मी परम्परा जिसके कालान्तर में नाटककार हुए भास, अश्वघोष, कालिदास और भवभूति आदि।

निष्कर्ष

मानव निरन्तर दुःखों से दूर जाने के लिए प्रयासरत है, उसके द्वारा किए गए प्रयास का ही फलरूप नाटक है। नाटक को देखकर, सुनकर सभी प्रकार के रसों की अनुभूति की जा सकती है। रसास्वादन, मनोरञ्जन व नवीन चिन्तन विकास के कारण ही दिनों-दिन नाटक की लोकप्रियता वृद्धि को प्राप्त हो रही है और मैं परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि रूपक और मानव का यह संग प्रवाह अबाध गति से प्रवाहित होता रहे और यह विश्व नित्य नाटक विधा से शुद्ध चेतन्य धारण कर जीवन रूपी डगर में अपनी भूमिका का निर्वहण करता रहे।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 1.16।
2. वही, 1.17।
3. महाभारत, हरिवंश पर्व अध्याय, 91-97।
4. महाभाष्य, महर्षि पतञ्जलि, 3.2-111।
5. कामसूत्र, वात्स्यायन, 1.4, 28-31।
6. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, 6.1।
7. वही, 6.3।
8. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, 1.116।
9. रंगमंच और नाटक की भूमिका, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० 84।
10. वही, पृ० 84।